ANUŚĪLANA, Vol. LXXV, Year 2017, ISSN 0973-8762

तादात्म्य की काल–निर्णय आधृत समस्या

अरविन्द जायसवाल
शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यत्र कालो न भासते।[1]

तादात्म्य, जो सभी चीजों का खुद से होता है, अगर नहीं होता है तो इसका मतलब होता है कि वह चीज वही नहीं है। दुग्ध का दुग्ध से तादात्म्य है। लेकिन, दुग्ध जब दधि बन जाता है तब उसका तादात्म्य दुग्ध से नहीं होगा। और, जो चीज अपने तादात्म्य को बनाए नहीं रखती ऐसी प्रत्येक चीज की अपनी कोई वास्तविकता नहीं होती, ऐसा अद्वैत–वेदांतविदों का मानना है, और, वही चीज जो कभी भी अपना तादात्म्य नहीं खोती आत्यन्तिक–वास्तविकता रखती है। जबकि, बौद्ध मतानुसार परिवर्तन में वास्तविकता होती है, सभी चीजें नदी के जल के समान बह रही हैं, अग्नि के समान जल रही हैं, बहती हुई या जलती हुई ये अपने होने को द्योतित करती हैं, और, कोई भी ऐसी चीज नहीं होती जिसका तादात्म्य कभी भी खंडित नहीं होता। तादात्म्य के इन दो विरुद्ध मतों की सुसंगत बनाने का प्रयास अपेक्षित है, ऐसा मेरा सोचना है। ध्यातव्य है कि इस तरह की सभी चर्चाओं में काल अनिवार्य रूप से संलग्न है। सम्भवतया यही वजह है कि अद्वैत–वेदांत और बौद्ध–मत दोनों ही अपने–अपने सत् की परिभाषा में ही काल की बात करते हैंः क्रमशः, त्रिकालाबाधित्वम् सत्वम् और यत् क्षणिकम् तत् सत्।

पाश्चात्य तर्कशास्त्र की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि शास्त्रीय तर्कशास्त्र, और इसके अन्तर्गत विचार का प्रथम नियम ही : जो कि "तादात्म्य का नियम" है, काल को संज्ञान में नहीं लेता है।[2] तादात्म्य–नियम के अनुसार, एक वस्तु केवल अपने आप से तादात्म्य रखती है, अन्य किसी चीज से नहींय वस्तु–'अ' का वस्तु–'अ' से तादात्म्य है–संक्षेप में, "'अ''अ' है"। इसमें अन्तर्निहित मान्यता यह है कि यदि कोई वस्तु काल के साथ नहीं बदलती है, दूसरे शब्दों में कहें तो यदि कोई वस्तु–'अ' जो काल 'क' में है वह काल 'क' के इतर अन्य कालों में भी वस्तु–'अ' ही रहे तो उसके साथ काल को संज्ञान में लेने की आवश्यकता नहीं हैय क्योंकि "'अ''अ' है" यह कथन करने हेतु, अर्थात् किसी वस्तु के वही वस्तु होने हेतु, काल की कोई उपादेयता नहीं है।[3] इस तर्क के द्वारा शास्त्रीय पाश्चात्य तर्कशास्त्र में काल को तादात्म्य के लिए निवार्य समझा गया है।

तद्वत, यदि अद्वैत–वेदांतियों के उस चीज पर विचार करें जो अपना तादात्म्य कभी भी नहीं खोता तो ऐसा लगता है कि काल की बात करना ही

निरर्थक है, क्योंकि काल तो परिवर्तन के मापक के रूप में ही समझा जाता है। इसलिए ही, सम्भवतया, अद्वैत–वेदान्ती कभी काल के विषय में मुखर नहीं हुए, कुछ एक दृष्टांतों को छोड़कर, जितना कि मैं जानता हूँ। काल को परिवर्तन के मापक के रूप में यदि समझें तो कम से कम इतना तो स्वीकारना ही होगा कि काल परिवर्तन–मात्र ही नहीं है, यह परिवर्तन से भिन्न है जिसमें कि परिवर्तन को मापा जा सकता है। अब, यदि काल परिवर्तन नहीं है तो दो सम्भावनाएँ बनती हैं–प्रथम, काल परिवर्तन का परिणाम है, द्वितीय, परिवर्तन काल का परिणाम है। प्रथम पक्ष, मेरी समझ से, बौद्धों ने समर्थित किया है तो द्वितीय पक्ष नैयायिकों, और भर्तृहरि जैसे वैय्याकरणों द्वारा समर्थित हुआ है। दोनों ही दशाओं में, यदि परिवर्तन होने का मापक काल है तो उसके ना होने का मापक भी काल ही होगा। और इस तरह, जबकि परिवर्तन के न होने को ही तादात्म्य समझा जाता है तो काल तादात्म्य का भी निर्धारक हुआ।

इस शोध–पत्र में यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि तादात्म्य एक–कालिक नहीं, बल्कि, द्विकालिक है। एक–कालिक तादात्म्य का तात्पर्य तादात्म्य–पर्यन्त काल के एक ही होने से है। जबकि, द्विकालिक तादात्म्य इस बात का निषेध है कि तादात्म्य–पर्यन्त काल एक ही होता है। और साथ ही, द्विकालिक तादात्म्य के ज्ञान में काल को संज्ञान में लेने की अपरिहार्यता है। द्विकालिक तादात्म्य की अवधारणा के माध्यम से यह प्रतिष्ठापित किया जा सकता है कि तादात्म्य के कथनों, यथा–"'अ''अ' है", "मैं मैं हूँ" आदि, में काल–ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। जहाँ तक बात कथन की है तो किसी भी तादात्म्य का कथन करके देखें, जैसे–"मैं मैं हूँ", क्या एक पुनरावृत्ति नहीं है इसमें? और, क्या कभी कोई पुनरावृत्ति काल के एक ही बिन्दु पर संभव है? निश्चित रूप से, काल के एक ही बिन्दु पर कोई पुनरावृत्ति संभव नहीं है। जब हम 'अ' को दोहराते हैं और "'अ''अ' है" ऐसा कहते हैं तो अपनी विचार–प्रक्रिया में काल को समाविष्ट करते हैं।[4] लेकिन, केवल कथन के उच्चारण में पुनरावृत्ति के होने, और इससे उसमें काल के महत्त्व के होने, से यह प्रतिस्थापित नहीं होता कि काल वस्तुतः तादात्म्य में उपादेय है। इस प्रतिस्थापना हेतु संपुष्ट आधार आवश्यक है। गुणात्मक तादात्म्य का विभेद प्रायः आंकिक तादात्म्य से किया जाता है। यह कहना कि इसमें और उसमें आंकिक तादात्म्य है ऐसा कहना है कि वे एक और अभिन्न हैं–एक ही वस्तु, बजाय दो होने के (Olson, 72)।[5] तादात्म्य–कथन, जिनकी यहाँ चर्चा हो रही है, आंकिक तादात्म्य से सरोकार रखते हैं, क्योंकि गुणात्मक तादात्म्य में कम से कम दो संदर्भ–वस्तुओं की अपेक्षा होती है, और निश्चित रूप से इस तरह की अपने–आप से तादात्म्य की स्थितियों में केवल एक ही संदर्भ–वस्तु को विषय बनाया जाता है। आगे इसी क्रम में, तादात्म्य के आंकिक होने और साथ ही एक–कालिक होने पर इस बात की कोई संभावना ही नहीं बनती है कि तादात्म्य–कथन में आए उद्देश्य और विधेय दोनों पदों के अपने–अपने संदर्भ–वस्तु हों। एक–कालिक रूप से, उनमें से केवल किसी एक के लिए ही संदर्भ–वस्तु उपलब्ध होगी। लेकिन, द्विकालिक तादात्म्य को स्वीकारने पर तादात्म्य–कथन "'अ''अ' है" में उद्देश्य–'अ' और विधेय–'अ' दोनों के लिए संदर्भ–वस्तु उपलब्ध होंगे, जो तादात्म्य–कथनों को

सार्थकता प्रदान करेंगे–इस तरह कि, "'अ''अ' है" में उद्देश्य–'अ' एक काल के 'अ' के संदर्भ में है तो विधेय–'अ' अन्य काल के 'अ' के संदर्भ में। प्रथम–दृष्टया काल को समाविष्ट करते हुए दो कालों के वस्तु–'अ' भिन्न लगते हैं, क्योंकि काल यदि वस्तु में गुणवत् समाविष्ट है और काल भिन्न है, तो वस्तु भी भिन्न हो गई, ऐसा आग्रह होता है। तादात्म्य की अनिवार्यता–कि तादात्म्य किसी काल में खंडित नहीं होता, विवादास्पद है। कोई भी, लाइब्नीज के अविभेदनीयों के तादात्म्य[6] के नियम का अनुसरण करते हुए, यह निदर्शित कर सकता है कि यदि एक काल के वस्तु–'अ' में काल गुणवत् समाविष्ट है तो काल के बदलने मात्र से वस्तु का तादात्म्य खंडित हो जाएगा। लेकिन इस आक्षेप को वे लोग तो बिल्कुल नहीं लगा सकते जो पहले ही काल को महत्त्वहीन मानकर नकार चुके हैं, क्योंकि यहाँ एक मात्र काल का ही तो भेद हो रहा है। तब भी, यह जो भेद परिलक्षित हो रहा है वह अधिक स्पष्टीकरण की माँग करता है।

तदर्थ, यदि जिज्ञासा करें, तादात्म्य का प्रश्न कब उठता है? कब तादात्म्य के बारे में जिज्ञासा या संदेह या आश्चर्य या प्रश्न किया जाता है–"क्या '–' और '–' तादात्म्य रखते हैं? ऐसा तब होता है, जबकि–दो भिन्न पद एक ही संदर्भ–वस्तु के लिए प्रयुक्त हुए हों। इस स्थिति में कोई पूछ सकता है–"क्या दोनों पदों के संदर्भ–वस्तु तादात्म्य रखते हैं?" यह आंकिक तादात्म्य की जिज्ञासा है। उदाहरणार्थ, क्या प्लेटो ही अफलातून है? यहाँ यह प्रश्न सार्थक है, क्योंकि दो भिन्न पदों का प्रयोग एक तरह के भेद का बोध करा रहा है। और, तादात्म्य का प्रश्न यह जानने हेतु है कि यह भेद वास्तविक है या नाम–मात्र में है।

दो संदर्भ–वस्तु जो समान गुण रखते हों, जैसे कि–जुड़वा बच्चे, और जो दो भिन्न नामों, उदाहरणार्थ–गोपी और किशन, के हैं भिन्न–भिन्न देश–काल में हमारे सम्मुख आएँ तो संदेह हो सकता है–दोनों कहीं एक तो नहीं? इस तरह की जिज्ञासा का आधार गुणात्मक तादात्म्य है। दो सन्दर्भ–वस्तु जिनके एक ही नाम हैं, और कोई व्यक्ति एक सन्दर्भ–वस्तु का अनुभव रखता है लेकिन दूसरे सन्दर्भ–वस्तु का नहींय तब व्यक्ति सन्दर्भ–वस्तुओं के नामों के एक होने से इस संदेह में पड़ सकता है कि उस नाम के दोनों सन्दर्भ–वस्तुओं में तादात्म्य है।

यद्यपि[7], मात्र इन्हीं स्थितियों में तादात्म्य का सवाल उठता है ऐसा नहीं कहा जा सकताय तथापि, यह स्पष्टतया हम अपने बुद्धि के स्वाभाविक प्रकाश से देख सकते हैं कि तादात्म्य का तब कोई प्रश्न ही नहीं उठता जब कि कोई वस्तु एक–कालिक है। तात्पर्य यह है कि जब कोई वस्तु काल के एक ही बिन्दु पर है तब किसी को उसके तादात्म्य की जिज्ञासा हो, ऐसा बोधगम्य नहीं है। इसे इस तरह अधिक स्पष्ट किया जा सकता है–क्या काल के एक ही बिन्दु पर किसी वस्तु का उसी वस्तु से तादात्म्य (या भेद), संभव है? हम कभी काल के एक बिन्दु पर ही किसी वस्तु के उससे ही भिन्न होने की बात नहीं सोच सकते। उसी तरह, काल के एक बिन्दु पर ही किसी वस्तु के उससे तादात्म्य की बात सोचना भी व्यवहार्य नहीं है। क्या कभी हम तब तक तादात्म्य की जिज्ञासा करते हैं जब तक कि किसी न किसी तरह के बदलाव या भेद को

संज्ञान में नहीं पाते? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक ही आएगा, ऐसा मेरा विश्वास है। अतः, भेद तादात्म्य के लिए अनिवार्य है। और, वस्तु में काल–भेद वही अनिवार्य भेद है जो वस्तु के उसी वस्तु से तादात्म्य को खण्डित नहीं करता। किसी वस्तु के उसी वस्तु से तादात्म्य के कथन, जिसमें एक ही नाम और एक ही संदर्भ–वस्तु होती है, कालगत होने पर ही स्वीकार्य हैं। इस तरह, तादात्म्य–कथन "'अ''अ' है" द्विकालिक तादात्म्य का कथन है, न कि एक–कालिक तादात्म्य का।

साथ ही, आंकिक तादात्म्य कथनों की सार्थकता काल को संज्ञान में लेने में है। काल के दो भिन्न बिन्दुओं पर किसी वस्तु का समान व अपरिवर्तित रहना उसके लिए काल को महत्त्वहीन नहीं कर देता, क्योंकि उसमें परिवर्तन नहीं हुआ यह निर्धारण भी काल ही संभव कराता है। अस्तु, आंकिक तादात्म्य की सभी जिज्ञासाएँ कालगत तादात्म्य की जिज्ञासाएँ हैं। वस्तुतः, देखा जाय तो गुणात्मक तादात्म्य में भी काल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यदि दो जुड़वा बच्चे एक ही काल–बिन्दु पर किसी के सम्मुख उपस्थित हों जाय तो उसके लिए उनके तादात्म्य की जिज्ञासा करना अस्वभाविक है। कोई भले यह कह सकता है कि इन दोनों में इस–इस पहलू से समानता है, लेकिन कोई यह बात निस्संदेह नहीं करेगा कि ये दोनों एक ही हैं। लेकिन वही जुड़वा बच्चे जब भिन्न कालों में एक ही या भिन्न स्थानों पर देखे जाते हैं तो उनके एक ही होने का संदेह होना अस्वभाविक नहीं है। तब उनका गुणात्मक तादात्म्य हमें आंकिक तादात्म्य के लिए जिज्ञासित करता है। यहाँ, मेरे विचार से, मैं यह कह सकता हूँ कि तादात्म्य के दावे काल–मुक्त होने के बजाय काल–युक्त होते हैं।

तादात्म्य की आलोचना करते हुए विट्गिन्स्टीन लिखते हैं (Tractatus 5.5303)–"मोटे तौर पर कहें तो, दो चीजों के तादात्म्य की बात करना निरर्थक है, और एक चीज का उसी से तादात्म्य बताना कुछ बताना नहीं है।" रसेल ने इनसे पहले एक चिंता जताई थी जिससे विट्गिन्स्टीन के उपरोक्त विचार को प्रेरणा मिली हो ऐसा प्रतीत होता है (The Principles of Mathematics,64)– "एक आपत्तिकर्ता आग्रह कर सकता है, तादात्म्य किसी प्रकार से कुछ नहीं हो सकता–दो पद तो सीधे–सीधे ही तादात्म्य नहीं रखतेय और, एक पद तो तादात्म्य रख ही नहीं सकता, किससे रखेगा?" रसेल से पूर्व फ्रेगे ने भी, "अर्थ और संदर्भ" के आरम्भ में, एक संबंध के रूप में तादात्म्य के संदर्भ में एक चिंता व्यक्त किया–"तादात्म्य–समानता चुनौतीपूर्ण प्रश्नों को उद्भूत करता है जिन सभी के एक साथ उत्तर आसान नहीं हैं। क्या यह एक संबंध है?" हाल ही में, सी. जे. एफ. विलियम्स (C. J. F. Williams) ने "तादात्म्य क्या है?"[8] नामक कृति में यह सुझाया है कि तादात्म्य को द्वितीय–क्रम के संबंध (second-order relation) के रूप में देखा जाना चाहिए, बजाय वस्तुओं के बीच एक संबंध समझने के, और, काइ विमिअर[9] (Kai Wehmeier) ने तर्क किया है कि एक द्विकीय (binary) संबंध जो कि प्रत्येक वस्तु स्वयं से रखती है, और अन्य किसी से नहीं, का आह्वान करना तार्किक रूप से अनावश्यक और तात्त्विक रूप से संदेहास्पद है।

यह शोध–पत्र न केवल तादात्म्य की द्विकालिकता को दिखाने का प्रयास है बल्कि इसके द्वारा साथ ही साथ इन उपरोक्त आलोचनाओं से तादात्म्य की अवधारणा को सुरक्षित करने का प्रयास भी है। विट्गिन्स्टीन, और समानतया रसेल, को प्रत्युत्तर में यहाँ कहा जा सकता है–एक चीज का उसी से तादात्म्य बताना उसका उसके काल के अन्य बिन्दुओं पर उपस्थितियों से तादात्म्य बताना है। फ्रेगे और उनकी भांति अन्य सभी को यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि तादात्म्य एक ही वस्तु की दो भिन्न काल–बिन्दुओं पर उपस्थितियों के बीच का संबंध है। अंत में, काइ विमिअर (Kai Wehmeier) का दृष्टिकोण –जिससे कि मैं भी वहाँ तक सहमत हूँ जहाँ तादात्म्य को एक–कालिक समझा जाता है–द्विकालिक तादात्म्य पर लागू नहीं होता। क्योंकि, एक वस्तु के काल के दो बिन्दुओं पर तादात्म्य के कथन की तार्किक आवश्यकता है। अस्तु, यह नहीं कहा जा सकता कि द्विकालिक तादात्म्य तार्किक रूप से अनावश्यक है। न ही तात्त्विक रूप से इस पर कोई संदेह कर सकता है कि काल परिवर्तन के होने में जितना महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है उतना ही परिवर्तन के न होने में भी। इस तरह, यहाँ यह दिखाने का प्रयास किया गया कि तादात्म्य को कालातीत समझना एक भ्रान्ति है तथा भेद/परिवर्तन के साथ–साथ तादात्म्य भी कालगत होता है।

संदर्भ

1. यह मीमांसकों की सूक्ति है, और वेदान्ती भी इसको अपनी सहमति देते हैं। देखें–Dhirendra Mohan Datta, The Six Ways of Knowing : a Critical Study of the Vedā nta Theory of Knowledge; London: G- Allen & Unwin, 1932, p. 103: "In every act of Knowledge, there must be a consciousness of time"
2. तुलना करें–George Pitcher, Truth; Prentice&Hall, Inc. Englewood Cliffs, New Jersey, 1964, p. 5: Propositions were …often conceived to be timeless nonlinguistic entities capable of being apprehended, and of being believed or disbelieved] by any number of different minds.
3. तुलना करें—Dhirendra Mohan Datta, The Six Ways of Knowing: a Critical Study of the Vedā nta Theory of Knowledge; London: G. Allen & Unwin, 1932, pp. 23–27. उपरोक्त, वेदान्तियों द्वारा धारावाही ज्ञान के संदर्भ में स्वीकृत दृष्टि, जैसे कि वेदान्त–परिभाषा में प्रतिपादित है, का एक पुनर्निवचन है।
4. वेदान्ती, जैसे कि वेदान्त परिभाषा में, इस तरह के विषयों में विचार–प्रक्रिया में किसी भी तरह के दोहराव को पूरी तरह नकारते हैं, जहाँ तक मैं समझता हूँ।
5. उद्धृत उक्तियों का अनुवाद मेरे द्वारा किया गया है। इसलिए इसमें हुई गलती की जिम्मेदारी मेरी है।
6. जो कि आम तौर पर निम्नवत् सूत्रबद्ध किया जाता है–
   if, for every property F, object x has F if and only if object y has F, then x is identical to y. (Forrest) Stanford Encyclopaedia of Philosophy) Or, in the notation of symbolic logic: $\forall F(Fx \leftrightarrow Fy) \rightarrow x=y$.
7. तुलना करें— cp. Aristotle, Topics, A 7, 103a7–14; quot., I. M. Bocheński, A History of Formal Logic: Sameness would be generally regarded as falling] roughly speaking] into three divisions. We generally apply the term numerically or specifically or generically—numerically in cases where there is more than one name but only one thing, e.g. "doublet" and "cloak"; specifically, where there is more than one thing, but they present no differences in respect of their species, as one man and another, or one horse and another: for things like this that fall under the same species are said to be

"specifically the same". Similarly, too, those things are called generically the same which fall under the same genus, such as a horse and a man.

8. C.J.F. Williams, What is identity, Oxford University Press 1989.
9. Kai F. Wehmeier, "How to live without identity—and why," Australian Journal of Philosophy 90:4, 2012, pp. 761–777.

Works Cited

Bocheński, I M. A History of Formal Logic. Trans. and Ed. by Ivo Thomas; Notre Dame, Indiana: University of Notre Dame Press, 1961.

Datta, Dhirendra Mohan. The Six Ways of Knowing: a Critical Study of the Vedā nta Theory of Knowledge. London: G. Allen & Unwin, 1932, pp. 23–27.

Pitcher, George (ed.). Truth. Englewood Cliffs, New Jersey: Prentice-Hall, Inc., 1964.

Olson, Eric T. "Personal identity." Science Fiction and Philosophy: From Time Travel to Superintelligence (2010): 72.

Forrest, Peter. "The Identity of Indiscernibles" in Stanford Encyclopaedia of Philosophy. First published Wed Jul 31, 1996; substantive revision Sun Aug 15, 2010. Wed 25 May, 2016: http://plato.stanford.edu/entries/identity-indiscernible/#Form

Wittgenstein, Ludwig. Tractatus: Logico Philosophicus. Trans., D. F. Pears and B. F. McGuinness; New York: Routledge and Kegan Paul, 1974, p. 63.